IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

मराठी संत कवयित्रियों के अभंगो मे आत्मकथन

सुप्रिया प्रभाकर जोशी

डॉ.बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय,

औरंगाबाद

मराठी साहित्य को कई वर्ष सदियों की परंपरा है। आधुनिक काल मे मराठी साहित्य मे साहित्य के गद्य प्रकारों मे आत्मकथा इस विधा को महत्व प्राप्त हुआ है। किंतु इस विधा के इतिहास का अध्ययन करते समय मराठी संत कवयित्रीयों का उल्लेख आवश्यक है।

इतिहास के दस्तावेजों को सबुत मानकर हम यह कहते है कि आत्मकथा इस विधा का विकास आधुनिक काल मे हुआ। आधुनिक काल मे थोडी बहुत स्वतंत्रता और मुद्रण की सुविधा के कारण हम इस बात को मानते है।

बीसवीं सदीं के उत्तरार्ध मे स्त्री विमर्श का आगाज पश्चिम की ओर हुआ था, इसके कारण भारत की नारी मे सामाजिक और वैचारिक दृष्टी से उन्नति के अग्रसर हुई है। पाश्चिमात्य देशों से पहले ही हमारे देश मे इसका प्रारंभ हो चुका था। महाराष्ट्र के संत कवयित्रीयों को यह अनुभव हुआ था कि स्त्री जाति को जीवन के हर क्षेत्र मे स्वतंत्रता चाहिए। आज से ८०० से १००० साल पुर्व के काल मे स्त्रियों ने अपने जीवन के सुख- दुःख और कटु अनुभवों को अपने अभंग के माध्यम से हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया है।

महाराष्ट्र मे १२०० से १७०० इ.स वी इन पांच सौ वर्ष के इस कालखंड मे समाज के भिन्न-भिन्न स्तरोंपर जीवनयापन करनेवाली संत कवयित्रीयां थी। इस परंपरवादी कालखंड मे विद्रोही भावनाओं को अपने आत्मकथन से प्रकट करने का काम इन कवयित्रीयों ने किया है। सामाजिक, सांकृतिक , धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थिती का परिणाम हमे संतो के साहित्यपर दृष्टिगत होता है। स्पृश्य-अस्पृश्य भेद , वर्ग वैषम्य आदि का विवरण संत साहित्य मे हुआ है। इन महिला संतों का आत्मकथन भावनाओं का अविष्कार है। इन्हे रोजमर्रा का जीवन जीते हुए आनेवाले सभी अनुभवों को इन्होने 'अभंग' मे पिरोया है। अध्यात्म, भक्ति, श्रद्धा से भी पुरोगामी दृष्टिकोन से जीवन को ओर देखने का और दिखाने का वैचारिक मार्गदर्शन इन महिलाओं ने किया है।

१२०० इ स वी मे और उससे पुर्व भी महाराष्ट्र लोगों का सामाजिक जीवन की अधोगती हो रही थी। जाति-पाति, धर्म और पंथ की दिवारें और भी मजबुत हो रही थी। स्त्रियों को सामाजिक और धार्मिक बंधनो मे जकडकर उनपर व्रत-वैकल्य, उपासना आदि बेहुदे बंधन उनपर लादकर उनके अस्तित्व को ही मिटाने का षडयंत्र बिछाया था। इस अंधकारमय स्त्रियों के जीवन मे भी एक आशा की किरण थी।

महानुभाव संप्रदाय, वारकरी संप्रदाय इन संप्रदायों ने जाति व्यवस्था का प्रभाव कम करके आध्यात्मिक स्वतंत्रता की नींव रखी। महिलाओं को भी इसमे स्थान दिया गया।

आज भी जहां महिलाओं को रुढि-परंपरा के बंधनों मे जकडकर रखा है। वही दसवें-बारहवें शतक मे निश्चितही इसके बंधन और भी कडे होंगे इसमे कोई दोराय नहीं। फिर भी अपने जीवन के अनुभवों को ओवी या अंभगो के माध्यम से अपने आपको व्यक्त करने से इन महिलाओं ने एक मिसाल कायम की है, एक आदर्श स्थापित किया है।

संत महदंबा :

संत कवयित्रीयों मे महदंबा का स्थान सबसे पहला है। संत कवयित्रीयों का अभ्यास करते समय महानुभाव पंथ की महदंबा का साहित्य देखे बिना हम आगे बढ ही नही सकते। प्रस्तुत काल मे धार्मिक बंधन बहुत कडे थे। इसके कारण महदंबा भी शिक्षित नही थी। किंतु उनमे काव्य प्रतिभा थी। उस प्रतिभा के परिणामस्वरुप 'धवळे' नामक काव्य विश्व के सामने आया।

संत महदंबाजी बालविधवा थी। चक्रधर स्वामीजी उनके गुरु थे। वैधव्य दशा का जीवन महदंबाने तीर्थयात्रा और सत्पुरुषों की सेवा मे व्यतीत किया। संत महदंबा ने धवळे , मातृकी रुक्मिणी स्वयंवर , गर्भकाण्ड ओव्या, आदि ग्रंथो की रचना की है। जिसमे उनके स्त्री सुलभ भावनाओं की छाया दृष्टिगत होती है।

संत जनाबाई :

संत जनाबाई का जन्म लगभग १२५८ इ स वी मे गंगाखेड, जिला परभणी मे हुआ। उनके पिता का नाम दमा था ।

‘ माझ्या वडिलांचे दैवत । तो हा पंढरीनाथा। ’ इस एक पंक्ति से यह अंदाजा लगा सकते है कि उनके पिता भी वारकरी संप्रदाय से जुडे थे।

जनाबाई घर के काम करते समय चक्कीपर धान पिसते समय अपने गीत गाती थी।

' दळिता कांडिता तुज गाईन अनंता । '

संत नामदेव यह जनाबाई के गुरु थे। नामदेव जी भी विठ्ठलभक्त थे उनके साथ रहकर जनाबाई भी विठ्ठलभक्ति मे और गहराई बढ गई । जनाबाई के अभंगों मे वात्सल्य, कोमलता, सहनशीलता, त्यागवृत्ती, समर्पण वृत्ती, आदि स्त्री विषयक भावना संत जनाबाई के अभंगो मे दिखाई देते है। माता-पिता ने उन्हे वर्णाश्रम व्यवस्था के तहत दामशेट के घर सेवा करने के लिए भेज दिया था। उनके घर गोबर उठाना, झाडु लगाना, पानी भरना, कपडे धोना, चक्की पिसना यह सारे काम करते समय भी वह विठ्ठल को पुकारती थी-

" एक ना, अवघे सार। वरकड अवघड ते असार ।

नाम फुकट चोखट । नाम घेता न ये वीट ।। "

इस पंक्ति से उनकी ईश्वर के प्रति समर्पण वृत्ती दिखाई देती है।

दामाशेट के घरपर सेवा के लिए उन्हे रखा गया था, उस समय वर्णव्यवस्था का परिणाम उन्हे भी भुगतना पडा।

" मज ठेवियेले व्दारी नीच म्हणोनि बाहेरी ।"

इन पंक्तियों मे उन्होने समाजव्यवस्था के प्रति विषाद व्यक्त किया है।

विठ्ठलजी के दर्शन के लिए वह मंदिर जाती है तो वहांपर उच्च जातियों के लोगों ने उसे धिक्कारा है। इतना ही नही भगवान विठ्ठल के गले का हार चुराने का झुठा आरोप भी लगाया है यह निम्नवत पंक्ति मे देख सकते है -

" अहे शिंपयाचे जनी। नेले पदक दे आणुनी । "

किंतु इस अन्याय से वह निराश नही होती । उसके खिलाफ खडे उच्चवर्णीय समाज से न डरते हुए वह मंदिर मे प्रवेश करती है।

"डोईचा पदर आला खांद्यावर। भरल्या बाजारी जाईन मी। "

इस तरह का विद्रोह वह सामाजिक व्यवस्था के अन्याय से मुक्ति की अभिलाषा है।

संत जनाबाई ने लगभग ३५० के आसपास अंभगों कि रचना की है। हरिशचंद्र आख्यान की रचना भी उन्होंने की है। उनकी अभिव्यक्ति जनमानस को समझ मे आए ऎसे सहज और सरल है।

संत मुक्ताबाई :

मुक्ताबाई यह जगतविख्यात संत ज्ञानेश्वर जी की बहन थी। मुक्ताबाई का जन्म १२७९ मे आपेगाव, जिला औरंगाबाद मे हुआ। मुक्ताबाई और उनके भाईयों का समाज ने धिक्कार किया , उपेक्षित रखा।

मुक्ताबाई की कल्याण पत्रिका, मनन, हरिपाठ, ताटीचे अभंग (ताटीचे अभंग से तात्पर्य है कि इन सभी भाई-बहन को समाज ने संन्यासी की संतान कहकर उपेक्षित रखा था। एक बार ज्ञानेश्वरजी को किसी व्यक्ति ने उन्हे इसी बातपर छेडा था उससे नाराज होकर उन्होने अपने आपको एक कुटी मे बंद करवाया। उस समय मुक्ताबाई दरवाजा खोलनेपर उन्हे मना रही थी वही बातें ' ताटीचे अंभग ' नाम से प्रसिद्ध हुए।)

लोगों के छल कपट को देखकर ज्ञानेश्वर जी चिंतित थे, क्रोध मे थे उन्हे समझाते हुए वह कहती है-

" नाममंत्र आम्हा हरिराम कृष्ण "

अपने आपपर होनेवाले अन्यायों के लिए ईश्वर का नाम ही लेना चाहिए इस तरह से समझाती हुई दिखाई देती है।

मुक्ताबाई के माता- पिता के देहत्याग के कारण और पुरोहित वर्ग के छल सहते हुए उन्हे भाईयों को संभालना था। वह इन जिम्मेदारीयों की वजह से समय से पहले परिपक्व हो गयी। भाईयों से उमर मे छोटी होने के बावजुद भी उन्हे मां का फर्ज अदा करना पडता है।

संत सोयराबाई :

संत सोयराबाई का जन्म १४वीं सदी मे माना जाता है। सोयराबाई संत चोखामेला की पत्नी थी। वह अपने आपको 'चोख्याची महारी' कहती है। पिछडी जाति की होने के समाज के अन्याय-अत्याचारों का उल्लेख उन्होंने उनके अभंगो मे किया है-

" देहासी विटाळ म्हणती सकळ ।

आत्मा तो निर्मळ शुध्द बुध्द ।।

देहीची विटाळ देहीच जन्मला।

सोवळा तो झाला कवण धर्म ।। "

अस्पृश्यता के कारण उनका मन विद्रोह कर उठता है, वह ईश्वर से कहती है कि अगर हमारे देह से समाज अशुध्द होता है तो देह किसने निर्माण किया? आत्मा तो शुध्द और पवित्र होता है तो ऎसा भेदभाव क्यों है ?

पिछडी जातियों को उच्च वर्ग सेवा करना ही भाग्य है, ऐसी समाज की मान्यता थी। मरे हुए जानवर को खींचते हुए वह गांव के बाहर ले जाते हुए वह ईश्वर से कहती है-

" अवघा रंग एक झाला रंगी रंगला श्रीरंगा।

मी तु पण गेले वाया पाहता पंढरीच्या राया। । "

ऐसे वर्णन करने के कारण वह संतो मे अपना अलग स्थान निश्चित करती है। आत्मशुध्दी से परमात्मा तक की यह यात्रा उन्होने अभंगो मे लिखी है।

" पोटी संतान न देखेंचि काही।

वाया जन्म पाही झाला माझा ।। "

इन पंक्तियों मे वह अपने स्त्री जन्मपर निरर्थकता व्यक्त की है।

" आमुची केली हीन याती।

तुज का न कळे श्रीपती ।।

जन्म गेला उष्टे खाता ।

लाज न ये तुमच्या चित्ता ।। "

समजव्यवस्था के घोर अन्यायों के कारण उन्होंने जो यातनाएं सही है वह हमारे भाग्य मे ही क्यों है ? इसपर वह ईश्वर से प्रश्न करती है।

ऐसे कई अभंग सोयराबाई के है। संत चोखामेला की पत्नी के अलावा अपनी एक अलग पहचान उन्होने समाज को दी है। सवर्ण उनके परछाई को भी अभद्र मानते है इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह करती है। स्वयं से , समाज से इसके लिए झगडती है। इसके लिए वह ईश्वर से भी विवाद करती है।

<u>संत निर्मला</u> :

संत निर्मला यह संत चोखामेला की छोटी बहन थी। निर्मला का जन्म १४वीं सदी मे हुआ। वह भी पिछडी जाति की होने कारण आध्यात्मिक ज्ञान और लौकिक ज्ञान से इस समुदाय को वंचित रखने के कारण निराश थी।

एक पिछडी जाति और उसमे भी स्त्री । इस प्रकार दोहरे अन्याय को उन्होने सहा है। उनके लिखे हुए २४ अभंग ही उपलब्ध है।

अपने भाई के साथ रहकर वह भी विठ्ठल भक्ति मे मगन थी।

संत निर्मला ने स्वयं के अभंगो से अपने आपको हीन-दीन और पतित कहा है। और हीन-दीन जनता को संभालनेवाला केवल विठ्ठल है ऐसा उन्होने लिखा है-

" हीन दीन मी पातकांची राशी।

शरण पायाशी जिवेभावे।।

निर्मळा म्हणे तुम्ही तो दयाळ ।

म्हणोनि सांभाळ करा माझा।। "

संत निर्मलाने चोखामेला को मन ही मन अपना गुरु मान लिया था। विठ्ठल का नाम का जाप करना यही जीवन के सुखों का मंत्र अपने गुरु से लिया।

" सापडले वर्म सोपे । विठ्ठल नाम मंत्र जपे।

मज नामाची आवडी। संसार केला देशोधडी।। "

इस प्रकार ईश्वर का नाम जापने से उन्हे संजीवनी मिली। उनके हाथों मे यह अध्यात्म का आत्मतत्व आ गया और देखते-देखते संसार, भौतिक सुख-सुविधा से ज्यादा ईश्वर का नाम लेना ही उन्होने पसंद किया-

" नाही आणिक साधन ।

सदा गाई नारायण।।

निर्मळा म्हणे देवा ।

छंद एवढा पुरवावा।। "

यह सबकुछ होने के बावजुद भी वह समाज मे ही रहती थी। अपनी जाति के कारण उन्हे मिलनेवाले कष्ट, यातना, अपमान इसके आघात मनपर हुए इसलिए वह गिने चुने शब्दों मे लिखती है-

" चहुकडे देवा दाटला वणवा। "

इसप्रकार अपने अंतर्मन की वेदना को उन्होने शब्दों मे पिरोया है।

<u>संत कान्होपात्रा</u> :

कान्होपात्रा १५वी सदी की मराठी संत कवयित्री थी। सारी महिला संत जहां स्त्री होनेपर अथवा पिछडी जाति की होने के कारण दुखी थी। वही कान्होपात्रा एक वेश्या की कन्या होने का भार ढो रही थी। किंतु उसका मन विठ्ठल के चरणों मे लीन था । उन्होने विठ्ठल के चरणोंमे समर्पित अभंग लिखे तो दुसरी ओर अपने शील की रक्षा के लिए याचना की है-

" दीन पतित अन्यायी। शरण आले विठाबाई।

मी तो आहे यातिहीन । न कळे काही आचरणा।।

मज अधिकार नाही। शरण आले विठाबाई।

ठाव देई चरणापाशी। तुझी कान्होपात्रा दासी।। "

इस अभंग मे वह कहती है कि मै दीन, पतित, यातिहीन हुं। सवर्ण उन्हे भक्तिमार्ग का अवलंबन करने से रोकते थे। उन्हे भक्ति करने का अधिकार नही दे रहे थे। वह कहती है कि मुझे भक्ति करने का अधिकार नही है। वह विनती करती है आप मुझे अपने चरणों मे जगह दे दीजिए।

बिदर का बादशाह ने कान्होपात्रा के सुस्वर गायन और रुप की चर्चा सुनी थी। बादशाह को उसे पाने की अभिलाषा हुई। उसने अपने सैनिक भेज दिए थे। यह वार्ता सुनकर उन्होने कहा है-

" पुरविली पाठ न सोडी खळ। अधम चांडाळ पामरशी। "

इस प्रकार करुण व्यथा उसने विठ्ठल को बताई है।

बादशाह सैनिकों ने चारो ओर से मंदिर को घेर लिया था। यह देखकर कान्होपात्रा ने विठ्ठल के सामने पुकार लगाई-

" नको देवराया अंत आता पाहु। प्राण हा सर्वथा फुटो पाहे ।

हरिणीचे पाडसे व्याघ्रे धरियेले। मजलागी जाहले तैसे देवा। ।

तुजवीण ठाव न दिसे त्रिभुवनी। धावे हो जननी विठाबाई ।

मोकलोनी आज जाहले उदास। घेई कान्होपात्रा ह्रद्यात। ।। "

अंत मे कान्होपात्रा की यह पुकार ईश्वर ने सुन ली। उन्होने ईश्वर के चरणोंपर ही अपने प्राण त्याग दिए।

संत वेणाबाई :

संत वेणाबाई का जन्म इ.स १६२७ मे हुआ। वेणाबाई का बालविवाह हुआ था। विवाह के बाद ससुराल जाने के कुछ समय पश्चात ही वह विधवा हो गई। उस समय विधवाओं का जीवन जीना अंगारोपर चलने के समान था।

वेणाबाई का मन अध्यात्म ज्यादा लगता था। उनकी आध्यात्मिकता की ओर झुकाव देखकर समर्थ रामदास जी ने उनके आध्यात्मिक गुरु बने।

किसी बालविधवा ने रामदास जी के दर्शन के लिए आना, किर्तन , प्रवचन को उपस्थित होना उस समय के रुढिवादियों को पसंद नही था। यह देखकर वेणाबाई ने लिखा है,

" तुझी तुझी तुझी तुझी पावना रामा।

भावे, अभावे, कुभावे, परि तुझी, पावना रामा ।।

सुष्ट हो, दुष्ट हो, नष्ट हो,परि तुझी, पावना रामा।

हीन दीन अपराधी , वेणी म्हणे, परि तुझी पावना रामा ।। "

इस प्रकार वेणाबाई ने श्रीराम को गुहार लगाई है।

वेणाबाई की यह भक्ति समाज को खटक रही थी। जननिंदा असह्य होने से उनके माता-पिता ने उसे जहर दिया था ऐसा कहा जाता है। वेणाबाईने अभंग,पद, आरतीयों की रचना की है।

इन संत कवयित्रीयों मे संघर्ष करने की ताकद थी। इस निश्चय के कारण उन्होने हर दबाव को तोडकर अपना हित पा लिया।

संत बहिणाबाई :

बहिणाबाई का जन्म इ स १६२८ में हुआ । माता-पिताने उनका विवाह केवल पांच वर्ष की आयु में तीस वर्ष के लड़के से करवा दिया।

किंतु बहिणाबाई को बचपन से परमार्थ, भक्ति करना पसंद था। गृहस्थी में से धीरे-धीरे ध्यान हट गया और पारमार्थिक वृत्ती बढ़ने लगी। घर के, खेती के काम करते समय भी वह अभंग गाती थी। तुकाराम जी के अभंग वह गाती थी। तुकाराम जी ने भी उन्हें अनुग्रहित किया।

सवर्ण वर्ग की बहिणाबाई ने निचली जाति का गुरु कैसे किया इस बातपर सवर्णों को आपत्ति जताई।

बहिणाबाई ने 'ब्राह्मण कोण' इस विषय को उपस्थित करके सवर्णोंपर, सनातनी वृत्ती पर अपनी आवाज उठाई।

बहिणाबाई ने अपने पति से, ससुराल से जो यातनाएं मिली है उसे कथन किया है -

"नामाचा विटाळ आमुचीये घरी ।

गीताशास्त्र वैरी कुळीं आम्हां।

देव तीर्थ यात्रा नावडती हरी।

ऐसीयांचे घरी संग दिला।। "

ससुराल से मिले कष्टों से वह व्यथित थी। उस समय के गांव के सवर्णों के छल कपट के कारण उन्हें वह गांव छोडना पडा। नए गांव मे किर्तन , प्रवचन मे तुकाराम जी के भजन वह सुनती थी। संत तुकाराम महाराज के अभंग सुनकर वह उनसे मिलने के लिए आतुर हो गई। उनसे मिलने के लिए उनका मन आक्रंद करता, ऐसे में वह बीमार पड़ गई।

"त्रिविध तापाने तापले मी बहु।

जाईना कां जीऊ प्राण माझा।।"

ऐसे मे संत तुकाराम जी ने उन्हे अनुग्रह दिया।

छोटी बारह साल की लडकी की भक्ति देखकर लोग आश्चर्य करते थे। किंतु उनके पति को यह पसंद नही आया, वह उनका सताने लगे । इसपर बहिणाबाई कहती है-

" भ्रतार हा माझा देखोनी तयासी ।

माझीया देहासी पीडा करी। ।

न देखवे तया द्वेषी जनाप्रती।

क्षणाक्षणा चित्ती द्वेष वाढे।।

म्हणे ही बाईल मरे तरी बरे।

इस कां पामरे भेटताती।। "

इन पंक्तियो के माध्यम से उन्होने ससुराल के कष्टों को व्यक्त किया है।

संत तुकाराम को गुरु करने वजह से उनके पति उन्हे बुरी तरह से मारते-पीटते थे, वह बताती है-

" सोसियले क्लेश जिवें बहु फार।

खुप कष्ट सोसले या जीवाने।। "

इस तरह पति के, ससुरालवालों के मारने-पीटनेपर भी उन्होने भक्ति नही छोडी। सबसे अहं बात यह है संत कवियित्रीयों की उन्होने सारी आपबीती अपने अभंग के द्वारा अभिव्यक्त की है।

संत नागरी :

नागरी यह संत नामदेव की भतीजी थी। 'नागरी नामदेवांची ध्वाडी' इस नाम से आठ अभंग और दो सौ अडतीस पंक्तियो मे नागरी ने अपना आत्मचरित्र लिखा है। पिता ने शादी करवा दी। किंतु ससुराल मे भक्तिमय वातावरण बिल्कुल भी नही था।

एकादशी के दिन वैष्णवों के दर्शन होगे इस इच्छा से उनका मन व्याकुल था, वह कहती है-

" वाटुली पाहता उत्कंठित मनी। "

सभी लोग हरिकथा का आनंद उठाते है किंतु वह घर की बहु होने के कारण उसे यह स्वतंत्रता नही थी। इसलिए वह विठ्ठल को पुकारती थी, ससुरालवालों को यह शंका उपस्थित हुई की उसपर किसी बुरी आत्मा का साया है इसलिए उसे कमरे मे बंद करवाया गया। ऍसे मे उन्हे उनके आराध्य की याद आती है, उनके मनमोहक रुप को याद करते हुए वह कहती है

" लावण्य पुतळा तो माझा कैवारी । "

उसकी आंखे विठ्ठल को देखने को तरसती थी इसलिए वह अकेली ही दर्शन के लिए चली गई । किर्तन मे उसे अकेला देखकर उसके पिता ने डांट दिया-

" काये तुज पीडणी सांगी जाली तेथे। "

पिता के इस सवाल का जवाब उसने इस तरह दिया-

" हरिकथेचा सोहळा नाही त्यांच्या गावी "

इस तरह लाज - लज्जा छोडकर उसने पिता को जवाब दिया इसका नागरी को दुख है।

इस विवाद पर संत नामदेव ने अपने भाई को समझाया। नागरी ने अपने जीवन की कथा ईश्वर की सेवा करके पुरी की।

कई संत कवयित्रीयों अपने अभंगो मे कुछ जगहो पर अपने आत्मकथन दिए है। किंतु नागरी पहली ऍसी कवयित्री है जिसने अभंगबद्ध आत्मचरित्र लिखा।

संत विठाबाई :

वारकरी संप्रदाय की एक कवयित्री थी विठाबाई। विठाबाई के अनेक अभंगो से उनके गृहस्थी के कुछ उदाहरण हमारे सामने आते है। उन्हे विवाह करने की इच्छा नही थी फिर भी माता-पिता ने चौदह वर्ष उनका विवाह करवा दिया। पती के विकारी वृत्ती का उनके मन को बहुत कष्ट हुआ, उन्होने कहा है-

" भ्रतार हो मजसी वोढतो येकांती।

भोगावे मजसि म्हणुनियां।। "

पती के इस बर्ताव के कारण हाथ मे विठ्ठल की मूर्ती लेकर घर से निकल गई। घर से निकलकर वह दर बदर भटकती रही। दो महीने वह हरिकिर्तन और सत्संग मे रहने लगी। वहीपर बची हुई जिदंगी बिताने की उनकी इच्छा थी। परंतु यह उनके मायके और ससुरलवालों को यह अच्छा नही लगा । वह घरपर चलने की जिद करने लगे । विठाबाई ने मना करने पर उनके पति उन्हे पिटनेपर उतर आए, इसपर वह अपने पति को कहती है-

" तुझी सत्ता आहे देहावरती समज।

माझेंवरी तुझी किंचित नाही।। "

उन्होने यह अंतर्भाव निर्भीडता से कह दिए। अपने गुरु के चरणों मे वह नतमस्तक हो गई । यह देखकर सब लोग चले गए । उसके आगे का जीवन उन्होने ईश्वर चिंतन और गुरु की सेवा मे व्यतीत किया।

उनके अभंगो से स्वामी व भक्त इस पवित्र रिश्ते का ऐक्यभाव जिस तरह दिखाई देता है उसी तरह पत्नी को भोगदासी माननेवाला पति और विठाबाई कि उच्चकोटि की विरक्ति यह संघर्ष उनके अभंगो से स्पष्ट रुप से दृष्टिगत होती है।

इन संत कवयित्रीयों के अनुभव के उद्‌गार को देखते हुए यह कह सकते है कि मराठी मे महिला साहित्य के लेखन की परंपरा संत कवयित्रीयों से शुरु होती है। इस काव्य मे तत्कालीन स्त्री मुक्ती का सुक्ष्मचित्र दिखाई देता है। जीवनयापन करते समय जो कष्ट, यातना, दुख उनपर रुढि- परंपरा के नामपर उनपर थोपे गए थे उसका चित्रण इन कवयित्रीयों ने आध्यात्मिक काव्य मे प्रतिकात्मक स्वरुप मे प्रकट किया है। फिर वह यातनाएं जाति - पाति के कारण हो,ससुरालवालों के रुक्ष व्यवहारो से हो या उनके स्त्री जाति की होने के कारण हो। इन कवयित्रीयों ने उत्पीडन का विरोध करते हुए उन्मुक्त स्त्री जीवन का सपना देखा है।

समाज की परंपरायुक्त चौखट को ध्वस्त करते हुए जीवन का एक नया रुप सामने लाने की कोशिश की है। पारंपारिक मुल्यव्यवस्था को परखते हुए उसमे वह स्वयं को खोजती है। जीवन का अर्थ खोजते हुए इन कवयित्रीयों ने जो साहित्य लिखा उसकी भुमिका स्त्रीवादी थी यही इनके साहित्य का महत्व है।

संदर्भ सुची :

१) गं.बा. सरदार - संत वाङमयाची सामाजिक फलश्रुती, लोकवाङमयगृह, मुंबई, ४थी आवृत्ती १९८२

२) वेदकुमार वेदालंकार - मराठी संतकाव्य,विकास प्रकाशन, कानपुर , प्रथम आवृत्ती २०००

३) इंगोले, डॉ.कृष्णा - लोकसंस्कृतीतील स्त्रीरुपे, महाराष्ट्र राज्य साहित्य आणि संस्कृती मंडळ , मुंबई, प्रथम आवृत्ती २००४

४)गोरे ,डॉ.दादा आणि मारवाडे, प्रा.नगेंद्र - महदंबेचे धवळे , पैठणी प्रकाशन,औरंगाबाद, द्वितीय आवृत्ती १९९०

५)महाराष्ट्र शासन - नामदेव गाथा , नामदेवांच्या परिवारातील अभंग.

६)प्र.के अत्रे - बहिणाबाईची गाणी , सुचित्रा प्रकाशन , मुंबई,पाचवी आवृत्ती १९८७

७)प्राचीन मराठी संत कवयित्रींचे वाङमयीन कार्य - डॉ.सुहासिनी इर्लेकर, परिमल प्रकाशन, औरंगाबाद, प्रथम आवृत्ती १९८०

८) संत जनाबाई चरित्र आणि काव्य - डॉ.सुहासिनी इर्लेकर,अनमोल प्रकाशन, पुणे-२, प्रथम आवृत्ती १९७६

९)महाराष्ट्र संत कवयित्री - ज.र.अजगावकर,भारत गौरव ग्रंथमाला, मुंबई,१९३९

१०) तत्रैव